1.1 प्रस्तावना

कवि कालिदास अपने युग में श्रेष्ठतम ;साहित्य को जन्म दे चुके थे। कवि और नाटककार के रूप में उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के उच्चतम मानदण्ड स्थापित कर दिये थे। उनके बाद के कवि लाख प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी उन मानदण्डों का स्पर्श न कर सके, परिणामस्वरूप अपने अस्तित्व के प्रदर्शन के लिए कवियों ने चमत्कार और विद्वता का सहारा लेकर अलंकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया। समय की गति के साथ परिष्कृत संस्कृत शैली, अत्यन्त गूढ़ उपमाओं तथा जटिल वाक्य रचनाओं के कारण भाराक्रान्त हो उठी तथा कविता की आत्मा इस नगर के नीचे कुचल कर रह गई। परवर्ती युग के कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन, वाक् चातुर्य और अनुकरण का पथ अपना लिया। इन कवियों में भारवि माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है। इन कवियों में भारवि निःसन्देह एक उच्चकोटि के कवि है। उनका एकमात्र महा काव्य किरातर्जुनीयम् संस्कृत साहित्य के वृहद्त्रयी के अन्तर्गत अग्रणी रूप में रखा जाता है।

इस इकाई के माध्यम से आप सर्वशास्त्रमय कवि कुल भूषण भारवि का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत भारवि के जीवन-परिचय ,उनके कृतित्व एवं महाकाव्य के रूप में उनके द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् का स्वरूप समझ सकेगें ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई की सहायता से आप -

- भारवि के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेगें।
- इसके माध्यम से आप किरातर्जुनीयम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेगें।
- इसके अध्ययन से आप महाकाव्य के लक्षणों को बता सकेगें।
- इसकी सहायता से आप भारवि विषयक प्रश्नों के उत्तर दे सकेगें ।

1.3 भारवि - परिचय एवं समय

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता के रूप में तथा संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में कालिदास के बाद भारवि का नाम विख्यात है। इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अश्वघोष में भी थी किन्तु वे विषय का त्याग नहीं करते थे। भारवि के बाद के कवियों ने दोनों को अपनाया। इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है।

1.3.1 भारवि का जीवन वृत्त

संस्कृत के अन्य महान् कवियों के समान भारवि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी अनेक किंवदन्तियों और अप्रामाणिक सूचनाओं का समुदाय प्राप्त होता हैं दण्डी के द्वारा रचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ है, जिसका एक नाम अवंतिसुन्दरी

कथासार भी है। उसमें भारवि के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचना दी गयी है। कहा गया है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम 'दामोदर' था। भारवि के पिता का नाम नारायणस्वामी था। कुछ विद्वानों का कथन है कि उक्त दामोदर भारवि के अनुज थे और दण्डी इन्हीं दामोदर के प्रपौत्र थे। दामोदर ने भारवि को माध्यम बनाकर राजा विष्णुवर्धन से सम्पर्क किया था। भारवि को वहाँ 'महाशैव' कहा गया है। किरातार्जुनीय में भारवि ने शिव की महिमा का वर्णन भी किया हैं भारवि के मित्र विष्णुवर्धन की पहचान विद्वानों ने सत्याश्रय (चालुक्यनरेश पुलिकेशन् द्वितीय) के अनुज के रूप में की है (615ई० के लगभग)।

'किरातार्जुनीयम् ' के द्वितीय सर्ग के श्लोक 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' (30) को लेकर कई कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें भारवि का योगदान कहा गया है। भारवि को सभी विद्वान् दाक्षिणात्य मानते हैं। सदारऋजन राय ने भारवि द्वारा समुद्र में सूर्यास्त-वर्णन करने के कारण भारवि को पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तट का निवासी सिद्ध किया है।

1.3.2 भारवि का समय

भारवि का समय मुख्यतः वाह्य प्रमाणों पर ही आश्रित है। अपनी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' में ऐसा कोई संकेत इन्होंने नहीं दिया है जिससे इनके काल का निश्चय हो सके। बाह्य प्रमाणों में सबसे महत्त्वपूर्ण ' ऐहोल का शिलालेख ' है जो कर्नाटक राज्य के बादामी जिले में मेगुती नामक ग्राम के निकट एक पहाड़ी पर बने जैन मन्दिर की बाहरी दीवार पर अंकित हैं। इसका समय 634 ई० (' शकसंवत् 556) हैं रविकीर्ति नामक कवि ने इस मन्दिर (जिनवेश्म) का निर्माण करके कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के श्लोक की रचना कर इसमें उत्कीर्ण कराये थे। उनमें अन्तिम (37 वाँ) पद्य इस प्रकार है-

येनायोजि नवेऽष्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।।

यहाँ रविकीर्ति ने अपने आपकों काव्य के क्षेत्र में कालिदास और भारवि की कीर्ति का आश्रय लेने वाला कहा है। स्पष्टतः भारवि 634ई० तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। इस प्रसिद्धि की अवधि के विषय में विद्वानों ने अनुमान किये हैं। कीथ का मत है कि उन्हें 550 ई० के आसपास माना जा सकता है। सरदारऋजन राय ने उक्त संकेत से 150-200 वर्ष पूर्व अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ई० में भारवि को मानने का सुझाव दिया है। किन्तु अन्य स्रोतों से इस विषय पर अधिक स्पष्टता प्राप्त होती है। दण्डि-कृत 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के एक अंश का उद्धरण जो, हरिहरशास्त्री ने निम्नांकित रूप में किया है ,जिसमें दामोदर द्वारा भारवि के माध्यम से विष्णुवर्धन नामक राजा की कृपा प्राप्त करने का निर्देश है - यतः कौशिककुमारो (दामोदरो) महाशैवं महाप्रभाव प्रदीप्तभांस भारवि रविमिवेन्दुरनुरुध्य दर्श इव पुण्यकर्माणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात्। विष्णुवर्धन चालुक्य-नरेश सत्याश्रय (पुलिकेशिन्-द्वितीय) का अनुज था, उसने सेनापति के रूप में नर्मदा - तट पर हर्षवर्धन को पराजित किया था। उसी ने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य - वंश की स्थापना 615 में की थी। भारवि से

मित्रता के कारण विष्णुवर्धन ने उन्हें अपना सभा-पण्डित बनाया था। इस प्रकार 615ई० के आस पास भारवि का भी समय माना जा सकता है। 634ई० में उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि के कारण रविकीर्ति ने उनका उल्लेख किया भारवि के समय के निर्धारण का एक अन्य सूत्र भी उक्त 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होता है। काञ्ची के पल्लव-नरेश सिंहविष्णु (शासनकाल 575-600ई०) ने भी भारवि को आश्रय दिया था। बाद में सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रविक्रम ('मत्तविलासप्रहसन' का लेखक) के आश्रय में भी भारवि रहे। भारवि को मनोरथ नामक पुत्र था। यही मनोरथ दण्डी के पितामह थे। यह सूचना 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होती है। एक दानपत्र से भी भारवि के काव्य का सम्बन्ध प्राप्त होता है। कोंकण के गंग - नरेश अविनीत का पुत्र दुर्विनीत (समय 580ई०) था जिसने 'बृहत्कथा' (गुणाढ्य-कृत पैशाची भाषा में निबद्ध लोककथा - संगह) का संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' के नाम से किया था तथा किरातार्जुनीयम् के 15 वें सर्ग (चित्रकाव्य से पूर्ण सर्ग) पर टीका भी लिखी थी। यह दानपत्र 'मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट (1916) में पृष्ठ 36 पर मुद्रित है - **''श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारती निबद्ध - बृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन''। इन** सूत्रों से यह अनुमान हो सकता है कि भारवि का समय 550 ई० से 620 ई० के बीच होगा। अष्टाध्यायी की वृत्ति 'काशिका' (660ई०) में जयादित्य ने किरातार्जुनीय के एक पद्यखण्ड (3/14) ' संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः का उद्धरण दिया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' की रचना स्पष्टतः भारवि के महाकाव्य की ख्याति से प्रेरित होकर प्रतिस्पर्धा में ही की थी। माघ का समय 675 ई० के आसापास माना जाता है। अतः भारवि को इन रचनाओं के कुछ पूर्व उक्त कालावधि में रखा जा सकता है। बाण द्वारा अपने हर्षचरित के प्रस्तावना में भारवि का उल्लेख न होना कुछ विद्वानों को खटकता है किन्तु इसे दो कारणों से स्पष्ट किया जा सकता है। पहली बात यह है कि बाण के समय (7वी शताब्दी का पूर्वार्ध) में उत्तरभारत में भारवि अधिक विख्यात नहीं हुए होंगे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाण के आश्रयदाता महाराज हर्षवर्धन के शत्रु पुलिकेशिन् के अनुज की राजसभा में भारवि थे। अतः बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया।

1.3.3 भारवि का ग्रन्थ

किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास-काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है। इसीलिए इसका शीर्षक है-किरातर्जुनीयम्। किरातः (किरातवेशधारी शिवः) च अर्जुनश्च-किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमास) तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातर्जुनीयम् (द्वन्द्वाच्छः से छ अर्थात् ईय प्रत्यय)। इसके कई सर्ग मुख्य कथा को छोड़कर कलात्मक वर्णनों में लगाये गये हैं। 15 वें सर्ग में युद्ध के क्रम में

चित्रकाव्य की छटा दिखायी गयी है । इस महाकाव्य में सर्गों की कथा इस प्रकार है-द्वैतवन में वनेचर का आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की प्रजा-पालन-नीति का वर्णन सुनाना, द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण (सर्ग-1) युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना, युधिष्ठिर का प्रतिवाद (सहसा विदधीत न क्रियाम्), व्यास का आगमन (सर्ग-2); व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग-विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान (सर्ग-3) इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना, शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन (सर्ग-4); हिमालय का वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्दिय-संयम का उपदेश (5); अर्जुन की तपस्या, विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं का आगमन (6); गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलासों का वर्णन, वन-विहार, पुष्पचयन (7); गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा तथा जल-क्रीड़ा का मोहक वर्णन (8); सांयकाल, चन्द्रोदय, मान मानभश् , दूती-प्रेषण, सुरति तथा प्रभात का वर्णन (9); अप्सराओं की चेष्टाएँ, उनकी विफलता (सर्ग-10); मुनि-रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन-संवाद, इन्द्र का अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश (11); अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन, किरातवेशधारी शिव का आगमन (12); शूकर (मूक दानव) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण-प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के भेजे गये वनेचर की अर्जुन के प्रति उलाहना पूर्ण कथन (13) वनेचर के लिए अर्जुन की उक्ति तथा किरातवेशधारी शिव का युद्ध हेतु आना (14); युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन (15) शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध, मल्लयुद्ध (16); शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध (17) बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रिादि द्वारा भी अर्जुन को विविध अस्त्रों का प्रदान, अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन (सर्ग-18)।

स्पष्टतः इस महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन, क्रीड़ादि-वर्णन एवं युद्ध-वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है । इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है । प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है । इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मांगलिक बनाया गया है । कलावादी भारवि ने सुन्दर हृदयावर्जक संवादों, काल्पनिक चित्रों तथा रमणीय वर्णनों से इसे भरकर नवीन दिशा का प्रवर्तन किया है। श्रंगार चेष्टाओं के वर्णन में मुक्तक काव्य की चित्रात्मकता इसमें उन्होंने भरी है। चतुर्थ से एकादश सर्ग तक के अन्तराल को ऐसे ही वर्णनों से भरा गया है । युद्ध का लम्बा वर्णन भी महाकाव्य की विशालता को भले ही रेखाकिंत करे,फिर भी उसमें कविता की आत्मा तिरोहित हो गयी है।

इस महाकाव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त कोटि के हैं। वीर रस प्रमुख है, श्रंगार रस अंश के रूप में है। इस महाकाव्य पर मल्लिनाथ ने टीका लिखी है, 15 वें सर्ग पर दुर्विनीत ने भारवि के काल में ही टीका लिखी थी। माघ ने इस काव्य की सभी विशिष्टताओं का अनुकरण करके

'शिशुपालवध' की रचना की। इस महाकाव्य के प्रथम तीन सर्ग बहुत लोकप्रिय हैं। इसमें मुख्य रूप से भारवि का राजनीति-ज्ञान प्रकट हुआ है।

1.3.4 भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य

भारवि मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं जिनका ध्यान काव्य के बहिरश: पर अधिक रहा है। अर्थपक्ष में गम्भीरता तथा सार्वजनीनता का निवेश भी उन्होंने किया है। चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले वे प्रथम संस्कृत कवि हैं। कृत्रिम भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने यह प्रकट किया है कि संस्कृत काव्य कितना दुरूह हो सकता है। किन्तु ऐसी शब्द-क्रीड़ा उनके काव्य में सीमित है, केवल 15वें सर्ग में चित्रकाव्य है और 5वें सर्ग में यमक का प्रयोग है। सामान्यतः भारवि वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसमें अल्पसमासों का प्रयोग होता है। व्याकरणशास्त्र के दुरूह नियमों के प्रति कवि की अभिरुचि अवश्य है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी भारवि में बहुत अधिक है। किन्तु इस समस्त कृत्रिमता के मध्य उनमें भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है जो सामान्य स्थलों में विपुल रूप से प्राप्त होती हैं भावों के अनुसार ही इन्होंने काव्य-कला का प्रयोग किया है, अर्थगौरव से पूर्ण सामान्य उक्तियों में प्रसादगुण है तो चित्रात्मक वर्णनों में ओजगुण के प्रयोग में भी कवि को संकोच नहीं है। अनेक अलंकारों और छन्दों का निवेश भी कवि ने भावों की आवश्यकता के अनुरूप ही किया है। इनकी शैली के विषय में जितना अन्य विद्वानों ने कहा है, उससे न्यूनतर स्वयं भारवि ने नहीं कहा। इससे प्रकट होता है कि कवि अपनी भाषा-शैली के प्रति पूर्ण जागरुक है।

भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं जैसे-भारवेरर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुरा भारविगिरः (अभिनन्द), नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः (मल्लिनाथ) इत्यादि इनमें भारवि की शैली की स्वाभाविक मधुरता के अतिरिक्त बाह्य-रूक्षता तथा अन्तः सरसता एवं अर्थगौरव की प्रशंसा की गयी है। इन पर विचार किया जायेगा। स्वयं भारवि ने अपने काव्य के विविध पक्षों में वचोविन्यास के विशिष्ट गुणो का निर्देश किया है जैसे-

(1) स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।। (किरातार्जुनीय 1/3)

वनेचर शब्द-सौष्ठव तथा औदार्य (अर्थसम्पत्ति) से शोभा पाने वाली निश्चित अर्थ से युक्त वाणी का प्रयोग कर रहा था। वाणी में शब्द की सामर्थ्य तथा अर्थ की समग्रता तो हो ही,साथ ही साथ विषय-वस्तु प्रमाण-सिद्ध हो अर्थात् असत्य न हो।

(2) स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।। (किरात. 2/27)

यहाँ भीम की वाणी की प्रशंसा में युधिष्ठिर कहते हैं। कि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन है (प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः, 2/28) जिसके शब्दों में स्फुटता (स्पष्टता) हो, अर्थ-गौरव (अर्थ का प्राचुर्य) विद्यमान हो, बातों में पृथगर्थता (पुनरुक्ति का अभाव या परस्पर विरोध का अभाव) हो और शब्दों की परस्पर आकांक्षा (सामर्थ्य) भी उपस्थित हो। भाषा के इन गुणों का भारवि ने उपदेश

ही नहीं दिया है,अपितु पालन भी किया है।

(3)विविक्तवर्णाभरण सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती
प्रवर्तन नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ।। (किरात० 14/3)

यहाँ अर्जुन किरातवेशधारी शिव से कहते हैं कि परस्पर असंकीर्ण वर्णो के आभूषण से युक्त, सुनने में सुखद (श्रुतिकटु-दोष से रहित), शत्रुओं के मन को भी प्रसन्न करने वाली तथा प्रसाद-गुण एवं अर्थगाम्भीर्य से युक्त वाणी पुण्यकर्म के बिना प्रवृत्त नहीं होती। काव्य में भी ऐसी भाषा-शैली वाञ्छनीय है। इसी क्रम में अर्जुन आगे भी कहते हैं -

(4) स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।
इति स्थितायां प्रतिपुरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः।। (किरात० 14/5)

अर्थात् कुछ लोग वाणी की वाच्यार्थ-सम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं, तो दूसरे विद्वान् केवल उक्ति (अर्थात् शब्द-सामर्थ्य) की प्रशंसा करते हैं इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के पृथक्-पृथक् विचारों की स्थिति में सभी लोगों को प्रसन्न करने वाली (शब्दार्थसमन्वित वाणी) अत्यन्त दुर्लभ होती हैं भारवि ने ऐसी ही वाणी की काव्य का उत्कर्ष समझा है।

कहीं-कहीं भारवि ने शास्त्रीय वैदुष्य का प्रदर्शन करते हुए सामान्य विषयों को भी गम्भीर रूप दे दिया है। किरातार्जुनीयम् के सत्रहवें सर्ग में वाणों के आधार पर अर्जुन की विजय-कामना की तुलना वैयाकरणों की शब्दाश्रित अर्थस्फुरण-कामना से की गयी हैं यह पद्य भारवि की अर्थगम्भीरता का उत्कर्ष प्रस्तुत करता है-

संस्कारवत्त्वद् रमयत्सु चेतः प्रयोग-शिक्षागुण-भूषणेषु।
जयं यथार्थेषु परेशु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशंषसे ।। (किरात० 17/6)

भारवि की काव्यशैली सामान्यतः वैदर्भी है, जिसमें समाससाहित्य या अल्पसमासता रहती है किन्तु कालिदास की शैली के समान कोमलता, पदलालित्य और परिष्कार का इसमें अभाव है। पाण्डित्य और कवित्व दोनों के प्रति समान आकर्षण के कारण भारवि भावों के सौन्दर्य पर तो ध्यान रखते हैं किन्तु शब्दों की मधुरता का बलिदान इनके पाण्डित्य के निकशोपल पर हो जाता हैं राजनीति-जैसे शुष्क विषय हो या शरद्-वर्णन-जैसा सरस विषय आये, भारवि की भाषा-शैली रूक्षता नहीं छोड़ती। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' कहा है। नारियल ऊपर से रूक्ष ही नहीं, परस्पर रेशों के संघटन के कारण अभेद्य भी होता है, उसकी अन्तः सरसता ऊपर से नहीं जानी जा सकती। वही बात भारवि के काव्य के बहिरश् में (भाषा-शैली में) निहित है । किन्तु ऊपरी रेशों को दूर हटाकर जब भावों के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जाता है तो चित्त प्रसन्न हो जाता है। एक ओर बहिरश् प्रभाव उत्पन्न कररने में समर्थ है, तो दूसरी ओर अन्तरश् चित्त को द्रवित करता है। द्रौपदी के उत्तेजक भाषण में कवि ने दोनों क्षमताएँ दिखायी हैं जैसे-

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विश्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयुन्नुत्सहसे न बाधितुम् ।। (किरात. 1/36)

शब्दों में यमक का प्रयोग और भावों में युधिष्ठर को उपालम्भ-ये दोनों समान रूप से निविष्ट हैं। आप इन दोनों भाइयों (नकुल-सहदेव) की वर्तमान दुर्दशा देखकर भी अपने धैर्य और संयम को छोड़ नहीं पाते-आश्चर्य की बात है । इस उपालम्भ की पराकाष्ठा तब होती है जब द्रौपदी युधिष्ठिर को धनुष छोड़कर हवन-कार्य में जीवन बिताने का व्यङ्ग्य करती है (विहाय लक्ष्मीपलिक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सऋजुहुधीह पावकम् 1/44) । पात्रों के अनुरूप ओजस्विता और शमन का आधान करने में भारवि की प्रवीणता अनुपम है, द्रौपदी तथा भीम के ओज- पूर्ण वचन पाठक को उत्तेजित करते हैं तो युधिष्ठर और व्यास के वचनों में शान्ति का निवेश है । इनमें कवि की नीतिकुशलता सर्वत्र प्रकट हुई है । राजा का आदर्श युधिष्ठिर की दृष्टि में मृदुता और उग्रता का यथावसर प्रयोग ही है-

समवृत्तिरुपैति मार्दवं, समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।
अधितिष्ठति लोकमोजसा, स विवस्वानिव मेदिनीपतिः।। (किरात० 2/38)

'किरातार्जुनीय' के चतुर्थ सर्ग में शरद्-ऋतु का भव्य वर्णन करते हुए इसी शैली में कवि ने कतिपय सुन्दर शब्दचित्र अंकित किये हैं। वर्षा के कारण जो मार्ग पहले टेढ़े-मेढ़े थे, अब शरद् में खेतों का जल सूख जाने से सीधे हो गये है; उन मार्गों पर समीपवर्ती (अगल-बगल) पौधों को बैल खा गये; गाड़ियों के पहियों के चिह्न (लीक) बन जाने से कहीं-कहीं उन मार्गो पर कीचड़ घनी हो गयी है और लोगों के निरन्तर आाने-जाने से अब वे मार्ग स्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं-

पपात पूर्वां जहतो विजिह्मतां, वृशोपभुक्तान्तिकसस्यसम्पदः।
रथाश्सीमन्तित-सान्द्रकर्दमान्, प्रसक्तसम्पात-पृथक्कृतान्पथः।। (किरात०4/18)

इसी प्रकार हरे-हरे सुग्गों के अपनी लाल चोंचों से धान की पीली बालियां को लेकर उड़ने में कवि ने उस इन्द्रधनुष के सौन्दर्य की उपमा दी है-

मुखैरसौ विद्रुमश्लोहितैः शिक्षाः पिषशी कलमस्य बिभ्रती ।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला, धनुःश्रियंगोत्रभिदोऽनुगच्छति।।(किराता० 4/36)

इस महाकाव्य के पंचम सर्ग में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग करते हुए कवि ने 'यमक' अलंकार का ऐसा प्रयोग किया है कि माघ इसके अनुकरण के लिए उत्सुक हो उठे। हिमालय का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

पृथुकदम्ब-कदम्बक-राजितं ग्रथित-माल-तमाल-वनाकुलम् ।।
लघु-तुषार-तुषारजलश्च्युतं धृत-सदान-सदानन-दन्तिनम् ।।

अर्थात् यह हिमालय बड़े-बड़े कदम्ब पुष्पों के समूह से शोभित है, पंक्तियों में निबद्ध तमालवनों से भरा है, यहाँ बूँद-बूँद करके हिमजल चू रहा है और सुन्दर मुखवाले (सदानन) मतवाले (सदानन) हाथियों को यह धारण करता है । इस प्रसंशा में एक पद्य पाद-यपक के रूप में है- सकलहंसगणं शुचि मानसम् (सभी हंस-गणों से युक्त पवित्र मानसरोवर) तथा सकलहं सगणं शुचिमानसम् (अपनी पत्नी पार्वती से विवाद किये हुए, प्रथम आदि गुणों के साथ, पवित्र मनवाले भगवान् शिव को) । इन दोनो को हिमालय धारण करता है । (5/13)

इसी सर्ग में एक प्रसिद्ध उपमा प्रयुक्त है जिसमें यक्ष अर्जुन को समझाता है कि यहाँ स्थल-कमल

के पराग आँधी (वात्या, चक्रवात) के द्वारा इस प्रकार उड़ाये जाते हैं कि आकाश मण्डलाकार बन जाता है । और स्वर्ण से निर्मित छत्र का रूप धारण कर लेता है -

उत्फुल्ल-स्थल-नलिनी-वनादमुष्म
दुद्धूतः सरसिज-सम्मभवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता
दाधत्ते कनकमयातपत्र-लक्ष्मीम्।। (किरात॰ 4/39)

इस उपमान के कारण कवि को 'आतपत्र-भारवि' भी कहा गया है । पंचम सर्ग में कवि ने अनेक छन्दों के प्रयोग की क्षमता भी दिखायी है । जैसे-द्रुतविलम्बित (1-16), औपच्छन्दसिक (17), क्षमा (18), प्रमिताक्षरा (20), प्रभा (21), रथोद्धता (22), जलधरमाला (23), प्रहर्षिणी (26), जलोद्वतगति (27) वसन्ततिलका (28-30), पुष्पिताग्रा (32), शालिनी (36), वंशपत्रपतित (43), मालिनी (52),। भारवि के द्वारा प्रयुक्त वंशस्थ छन्द की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में की है। इस छन्द का उपयोग कवि ने प्रथम, चतुर्थ, अष्टम, चतुर्दश -इन सर्गों में मुख्य छन्द के रूप में किया हैं मुख्य छन्द के रूप में इन्होंने वियोगिनी (सर्ग-2), उपजाति (सर्ग-3,16,17), प्रमिताक्षरा (सर्ग-6), प्रहर्षिणी (सर्ग-7), स्वागता (सर्ग-9), पुष्पिताग्रा (सर्ग-10), अनुष्टप (सर्ग-11 तथा 15,) उद्गता (सर्ग-12), औपच्छन्दसिक (सर्ग-13 में 34वें पद्य तक, 35 से 70 तथा रथोद्वता) का प्रयोग किया है, सर्गान्त में छन्द के परिवर्तन की पद्धति भी रखी है । अठारहवें सर्ग में भी पंचम सर्ग के समान अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के वैविध्य का प्रदर्शन संस्कृत कवियों में सर्वप्रथम भारवि ने ही में किया हैं यह उनके पाण्डित्य और विचित्र मार्ग के प्रवर्तन का परिचायक है ।

अलंकारों का स्वाभाविक वर्णन ऊपर दिये गये है। हिमालय-वर्णन के प्रसंग में 'रूपक' का निम्नांकित पद्य में बहुत सुन्दर प्रयोग है-

श्रीमल्लताभवनमोषधयः प्रदीपाः
शय्या नवानि हरिचन्दन-पल्लवानि।
अस्मिन् रतिश्रमनुदश्च सरोजवाताः
स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः।। (किरात॰ 4/28)

अर्थात् यहाँ शोभासम्पन्न लताकुंज ही भवन हैं, ओषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) दीपक हैं, हरिचन्दन (कल्पवृक्ष) के नये-नये पल्लव शय्या हैं; रति के श्रम को दूर करने वाले कम वन-जन्य समीरण सुरसुन्दरियों को स्वर्ग का स्मरण करने ही नहीं दे रहे हैं । भाव यह है कि हिमालय में प्राप्त भोग-सामग्री स्वर्ग से भी बढ़कर है ।

प्रयत्न-साध्य अलंकारों में अर्थालंकार नहीं, शब्दालंकार ही हैं जो 'चित्रकाव्य' के रूप में प्रयुक्त हैं। इस दृष्टि से शिव और अर्जुन विचित्र युद्ध का वर्णन करने के लिए पंचदश सर्ग नियुक्त किया गया है। इस सर्ग में कहीं एकाक्षर पद्य हैं (श्लोक-14), कहीं दो अक्षरों का पद्य है (5,38); कहीं पादादि-यमक है (10), तो कहाँ पाद के आदि-अन्त में यमक है (8, माविह्मसिष्ट समरं समरन्तव्यसंयतः) कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है (12) तो कहीं सर्वतोभद्र है (25); कहीं पूर्वार्ध

और उत्तरार्ध एक ही है (16 तथा 50); कहीं एक ही श्लोक सीधा-उलटा एक समान है (18 तथा 20) कहीं चारों पादों की एकरूपता से महायमक है (52 विकाशमीयुर्जगतीषमार्गणाः-चारों पादों में यही है); कहीं दो अर्थों वाले (16,50,), कहीं तीन अर्थो वाले (42) और कहीं चार अर्थों वाले पद्य भी हैं (52)। इस प्रकार भारवि ने प्रयत्नसाध्य चित्रालंकार का व्यापक रूप से इस सर्ग में प्रयोग किया है।

यहाँ एकाक्षर (केवल एक व्यंजन 'न') प्रयोग वाले पद्य का उदाहरण दिया जाता है-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनों नानेना नुन्ननुन्ननुत्।। (किरात० 14/14)

अर्थ इस प्रकार है- (नानाननाः) हे अनेक मुखवाले शिवसैनिको, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरुष (ना न) वस्तुतः पुरुष नहीं है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है ऐसा (ना ननु अना) पुरुष वस्तुतः पुरुष से भिन्न अर्थात् देवता हैं। (न-नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध-मुक्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पूर्वार्ध की आवृत्ति उत्तरार्ध के रूप में होने से दो-दो अर्थ निकलते हैं-

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारवणोऽयुगलोचनस्य।
घनं विदार्यार्जुनबाणपूर्ग ससार बाणो युगलोचनस्य।। (किरात०15/50)

'इधर त्रिलोचन शिव का शक्ति - सम्पन्न (संसार) और ध्वनियुक्त बाण अर्जुन के घने बाण-समूह को छिन्न-भिन्न करके व्याप्त हुआ और उधर द्विलोचन अर्जुन का बाण घने अर्जुन वृक्ष, बाणवृक्ष और सुपारी (पूग) के वनों को चीर कर व्याप्त हुआ। एक पद्य में जो चारों चरण समान हैं वहाँ विकासमीयुर्जगतीशमार्गणाः (पद्य-52)-के चार अर्थ इस प्रकार हैं - (1) जगतीश - मार्गणाः विकासम् ईयुः = पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार का प्राप्त हुए। (2) जगति ईशमार्गणाः विकासम् ईयुः-संसार में शिव के बाण वि-कास (विषम गति) को प्राप्त हुए अर्थात् बिखर गये, टूट गये। (3) जगती-स-मर-गणाः विकासम् ईयुः = संसार को दुःख देने वाले (जगतीं ष्यन्ति तनूकुर्वन्ति इति) दानवों को मार डालने वाले शिवगण प्रसन्न हुए। (4) जगतीश-मार्गणाः वि-कासम् ईयुः-जगती के स्वामी शिव को ढूँढ़ने वाले (मार्गणाः) देवादि-समूह पक्षियों के स्थान पर (वि = पक्षी, काश = स्थान) अर्थात् आकाश में आ गये।

इस प्रकार भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकार का प्रयोग करके संस्कृत भाषा की उस क्षमता का प्रकर्ष दिखाया है जो संसार के अन्य किसी भाषा में नहीं है। शब्द-विश्लेषण-शास्त्र (व्याकरण) का इसमें प्रभूत योगदान है। भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकनुभव का प्रकृष्ट परिचय उनकी सूक्तियों में प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध सूक्तियों का भाण्डार है। इन सभी में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार निहित है। यहां कुछ सामान्य सूक्तियों के उद्धरण दिये जाते हैं -

(1) **हितं मनोहरि च दुर्लभं वचः** (1/4) - ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हित कर होने के साथ मन

के अनुकूल भी हो ।

(2) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोअपि सम महात्मभिः (1/5) - नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है।

(3) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (1/23)- बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही।

(4) वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (8/39) प्रेम में गुण बसते हैं, किसी भौतिक पदार्थ में नहीं।

(5) आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (11/12)-इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं, अन्तिमावस्था में वे सन्ताप ही देते हैं।

(6) सुलभा रम्याता लोको दुर्लभं हि गुणार्जनम् (11/11)- संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है।

(7) सहसा विधदीत न क्रियाम् (2/30) - बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए।

(8) अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः (11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये, तथापि उसे देखकरा मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है।

(9) दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम् (10/40) किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है।

(10) आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (9/64-) सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं।

(11) यथोलारेच्छा कि गुणेषु कामिनः (8/4)-कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते हैं। (उपस्थित गुणों से संतुष्ट नहीं होते)।

(12) मात्सर्यरागोपहतामनां हि स्खलन्ति साधुश्वपि मानसानि। (3/53)-ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष-युक्त ही रहते हैं।

(13) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (9/16) सभी लोग निरापद स्थान पर चाहते हैं भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता हैं। इसलिए तद्विषयक सूक्तियाँ भी उन्होंने अनेकानेक दी हैं। जैसे- प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (3/17 युद्ध में विजय की प्राप्ति पराक्रम पर ही आश्रित होती है), तेजोविहीनं विजहाति दर्पः (17/16 निस्तेज के पास स्वाभाविकता कहाँ से होगी ?), अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः (1/33 क्रोध-शून्य व्यक्ति का न मित्र ही आदर करता है और न शत्रु ही उससे डरता है), ब्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिन: (1/30 वे मूर्ख अवश्य ही पराजय पाते हैं जो मायावियों के प्रति माया का प्रयोग नहीं करते), प्रकृतिः खुल सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया 2/21 बड़े लोगों का यह स्वभाव है जिसके कारण वे दूसरों के अभ्युदय को सह नहीं पाते)।

किरातार्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से पूर्ण अनेक पद्य है जैसे-ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (2/5) अर्थात् विद्वान् लोग किसी की वाणी के गुणों का ग्रहण करते हैं, वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (स्त्री की बात है या पुरुष की)। अर्थगौरव से सम्पन्न यह पद्य बहुधा उद्धृत किया जाता है -

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः। (किरात० 2/3)

नीतिशास्त्र बहुत दुर्गम है, फिर भी इसमें लोग प्रवेश करते ही हैं क्योंकि इसमें प्रवेश करने के लिए गुरुओं ने मार्ग बनाये हैं जलाशय में प्रवेश करने के लिए सोपान बना दिये जाने पर सभी लोगों का अवगाहन सरल हो जाता है वैसे ही भयावह नीतिशास्त्र की स्थिति हैं किन्तु वह व्यक्ति दुर्लभ होता है जो कृत्य (नीतिशास्त्र पक्ष में-करने योग्य कार्य, जलाशय पक्ष में-स्नानादि) के लिए उचित मार्ग बताये। नीतिक्षेत्र में उस व्यक्ति का महत्व है जो समय पर कर्तव्य के विषय में सही परामर्श दे। जलाशय के पक्ष में वह व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है जो जलाशय में सोपान बना दे, स्नान करने वाले तो अनेक होंगे।

बोध प्रश्न -

1. भारवि का समय मुख्यत: प्रमाणों पर आधारित है -

क. अन्तरंग ख. बहिरंग ग. अन्तरंग व बहिरंग घ . साक्ष्य

2. अवंतिसुन्दरी कथा के रचनाका हैं -

क. दण्डी ख. भारवि ग. बाण घ . माघ

3. रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए -

अ. भारवि का समय .... के बीच माना गया है।

ब. किरातार्जुनीयम् .... विभक्त है।

4. सही या गलत का निशान लगायें -

अ. दण्डी भारवि के पुत्र थे ( )

ब . भारवि का एक नाम दामोदर था ( )

1.4 महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम्

भारवी का केवल एकमात्र 'किरातर्जुनीयम् ' महाकाव्य ही उपलब्ध है और कुछ विचारकों का तो कहना है कि संस्कृत के महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् सर्वप्रथम है, जो तत्कालीन महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर अधिक से अधिक खरा उतरा है। इसी कारण महाकाव्यों की श्रेणी में यह महाकाव्य सर्वोपरि प्रतिष्ठित है। हम'किरातार्जुनीयम्' को एकदम यह स्थान प्रदान करें या न करें, पर इतना तो अवश्य है कि इस महाकाव्य ने अपनी प्रशंसित गुणों के कारण संस्कृतसाहित्य में विशिष्टस्थान प्राप्त किया है । और संस्कृतमहाकाव्य की वृहत्त्रयी (किरातर्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम्) में इसका प्रमुख स्थान है तथा समस्त संस्कृत साहित्य में किरातर्जुनीयम् के समान दूसरा कोई ऐसा ओजपूर्ण तथा उग्र काव्य नहीं मिल सकेगा। आगे इसके महाकाव्यत्व के रूप को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

1.4.1 महाकाव्य का लक्षण

काव्य शास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्य दर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:-